पुरुषार्थसिद्धयुपाय (फोल्डर नं. ००११०४)

अमृतचन्द्राचार्य विरचित – टीकाकार-पं. मक्खनलाल शास्त्री

मुख्य टाइटल
समर्पण
आशीर्वाद
संकल्प
आभार
प्रकाशकीय
प्रस्तावना
विषय सूची
मंगलाचरण -- १-१५
ग्रन्थ रचना करने में आचार्य का अभिप्राय --१५-२२
संसारी जीवों की समझ -- २२-२४
व्यवहार नय की उपयोगिता -- २४-२७
उपदेश देने का पात्र -- २८-२८
पुरुष (आत्मा) का स्वरूप -- २९-४४
जीव स्वयं कर्ता भोक्ता है -- ४४-५०
पुरुषार्थ सिद्धि का उपाय -- ५०-५५
जीव और कर्म में निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध -- ५५-६२
अज्ञानी जीवों की समझ -- ६२-६६
पुरुषार्थ सिद्धि का उपाय -- ६६-६८
मुनियों की अलौकिक वृत्ति -- ६८-७०
एक देश व्रत किसे देना ठीक है -- ७०-७५
दंडनीय उपदेश और उपदेश का क्रम -- ७५-८३
सम्यग्दर्शन का पहले ग्रहण क्यों -- ८४-९७
सम्यग्दर्शन का स्वरूप -- ९७-१३५
सम्यग्दर्शन के आठ अंगो का स्वरूप -- १३५-१६०
सम्यग्ज्ञान का विवेचन -- १६०-१८०
सम्यक् चारित्र का स्वरूप -- १८०-१८३
हिंसाका सव्यापक स्वरूप -- १८३-२०८
अष्ट मूल गुण -- २०८-२१९
धर्मोपदेशॉं पाने के पात्र -- २१९-२३६
असत्य का लक्षण -- २३७-२४६
चोरी का लक्षण -- २४६-२५१

मैथुन का लक्षण -- २५१-२५४
परिग्रह का लक्षण -- २५४-२६६
सम्यग्दर्शन के घातक चोर --- २६६-२७१
रात्रिभोजन का त्याग --- २७१-२८०
सप्त शील पालने की आवश्यकता -- २८१-२९६
सामायिक का स्वरूप --- २९६-३००
प्रोषधोपवास का वर्णन --- ३००-३०८
भोगोपभोगपरिमाणव्रत --- ३०८-३१५
अतिथिसंविभाग व्रत --- ३१५-३२९
सल्लेखना का स्वरूप --- ३२९-३३५
अतीचारों की संख्या --- ३३५-३७२
तप का विधान --- ३७२-३७९
मुनिवृत्ति धारण करने का उपदेश -- ३७९-३८०
षट् आवश्यक -- ३८०-३९३
गुप्तित्रय --- ३९३-३९४
पंच समिति --- ३९४-३९५
दश धर्म --- ३९५-३९८
द्वादश अनुप्रेक्षा --- ३९८-४०७
परिषह जय --- ४०७-४१५
मुनिधर्म गृहस्थ को भी पालन करना चाहिये --- ४१५-४१७
गृहस्थों को भी मुनिपद धारण करना चाहिये --- ४१७-४१७
रत्नत्रय कर्मबन्ध का कारण नहीं है -- ४१७-४१८
रत्नत्रय और राग का फल -- ४१८-४२१
बंध का कारण -- ४२१-४२५
रत्नत्रय से बंध क्यों नहीं होता -- ४२५-४२६
रत्नत्रय तीर्थंकरादि प्रवृत्तियों का भी बंधक नहीं है-- ४२६-४२९
सम्यक्त्व को देवायु का कारण क्यों कहा गया है -- ४२९-४३०
भिन्न भिन्न कारणों से भिन्न भिन्न कार्य होते हैं --- ४३०-४३१
रत्नत्रय मोक्ष लाभ कराता है -- ४३१-४३२
परमात्मा की मोक्षावस्था -- ४३२-४३२
परमात्मा का स्वरूप -- ४३२-४३४
जैन नीति अथवा अपेक्षा विवेचना -- ४३४-४३७
ग्रन्थ समाप्त करते हुए आचार्य अपनी लघुता बताते हैं -- ४३७-४३९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org